'आदिवासी नहीं नाचेंगे': आदिवासी जीवन संघर्ष और वर्तमान सामाजिक यथार्थ

- मनीषा के. एस.

शोध-सार

आज जब भी कहीं विकास के नाम पर कोई नई परियोजना प्रस्तावित होती है उसका सबसे प्रतिकूल प्रभाव आदिवासियों पर ही पड़ता है। ये परियोजनाएँ देश के अन्य नागरिकों के लिए विकास और उन्नति लेकर आती हैं तो आदिवासियों को मिलता है विस्थापन। हाँसदा सौभेन्द्र शेखर ने कहानी में विकास और विस्थापन के इस समीकरण को विस्तार से चित्रित किया है। लोकतंत्र की अवधारणा किसी देश के नागरिकों की समानता और स्वतंत्रता पर आधारित है लेकिन कहानी इस स्वतंत्रता और समानता के नकाब को भी उतरती है। भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए अनेक विशेष प्रावधान हैं। लेकिन इन विशेष प्रावधानों के बावजूद आदिवासी समाज अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। झारखंड के आदिवासियों के विद्रोह और संघर्ष की कहानी के माध्यम से हाँसदा सौभेन्द्र शेखर ने आदिवासी समाज तथा वर्तमान राजनीति और सामाजिक यथार्थ को यथावत चित्रित करने का प्रयास किया है।

बीज-शब्द : आदिवासी जीवन-संस्कृति, आदिवासी जीवन-दर्शन, आदिवासी संस्कृति, अस्तित्व, मुख्यधारा समाज, सामंती-समाज, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, आधुनिकीकरण, विद्रोह, प्रतिरोध, विस्थापन, दिकू

इतिहास की ओर देखें तो हमें यह ज्ञात होता है कि आदिवासी समाज निरन्तर संघर्ष करते आया है। संघर्ष अपनी अस्मिता के लिए, संघर्ष अपनी आजीविका के लिए, अपने संसाधनों के लिए। संघर्ष अपनी सांस्कृतिक स्वतंत्रता और धार्मिक पहचान के लिए। और यह संघर्ष आज भी जारी है। आदिवासियों में सामूहिकता की संस्कृति, पूर्वजों के प्रति आस्था, प्रकृति के साथ सहचर, सभी जीवों के प्रति समानता की भावना, संसाधनों की मितव्ययिता और जीवन के प्रति उत्साह तथा उमंग आदिवासी जीवन-संस्कृति की विशेषताएँ हैं। यही सब मिलकर आदिवासी जीवन-दर्शन का निर्माण करते हैं। पंद्रह सूत्रीय रांची घोषणा-पत्र में आदिवासी साहित्य के लिए अनिवार्य आदिवासी दर्शन का पहला तत्व है उसका प्रकृति की लय-ताल और संगीत का अनुगामी होना। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आदिवासी दर्शन का होना आदिवासी साहित्य की बुनियादी शर्त है।

आदिवासी दर्शन के केंद्र में सहजीवन का भाव है। प्रकृति के सभी घटकों, जिसमें प्रकृति के सभी सजीव और निर्जीव तत्व शामिल है, के साथ सहचर का भाव। यह मुख्यतः रचाव और बचाव का दर्शन है। डॉ. गंगा सहाय मीणा लिखते हैं- 'आदिवासी दर्शन सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना आधार मानते हुए रचाव और बचाव में यकीन करता है इसीलिए इसमें स्वानुभूति या सहानुभूति के स्थान पर सामूहिक अनुभूति का प्रबल स्वर-संगीत सुना जा सकता है।' आदिवासी दर्शन किसी भी परलोक की सत्ता को नकारते हुए सम्पूर्ण प्रकृति और उसके सम्पूर्ण जीवन-जगत को महत्वपूर्ण मानता है। आदिवासी दर्शन पूरी दुनिया में फैल रही बाजारवादी लालसा और उससे उत्पन्न धन-लोलुपता और हिंसा को नकारता है। आदिवासी दर्शन जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा का दर्शन है। आदिवासी दर्शन से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण आदिवासी साहित्य के केंद्र में भी जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा का भाव निहित है। एक ओर जहाँ गैर-आदिवासी लेखन रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि के पूर्वाग्रहों से भरा पड़ा है वहीं आदिवासी साहित्य और दर्शन में इनके प्रति कोई आग्रह नहीं है। यही कारण है कि जब पूरी दुनिया एक सांस्कृतिक और एक भाषा के विचार की ओर बढ़ रही है, आदिवासी दर्शन मानव समाज की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के पक्ष में है। आदिवासी दर्शन आदिवासी साहित्य का मूल आधार है वहीं आदिवासी दर्शन का बचाव और उसकी अभिव्यक्ति आदिवासी साहित्य आंदोलन का मुख्य उद्देश्य है।

तथाकथित मुख्यधारा समाज द्वारा आदिवासी जीवन-संस्कृति पर लगातार हमला किया जाता रहा है। सामंती-समाज द्वारा आदिवासियों के जल-जंगल-जमीन पर शुरू किया गया अतिक्रमण आज के वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में जल-जंगल-जमीन के साथ-साथ आदिवासी संस्कृति, परम्परा और इतिहास पर अतिक्रमण तक पहुँच गया है। विकास के नाम पर सरकारें आदिवासियों के संसाधनों पर कब्ज़ा कर रही हैं, तो आधुनिकीकरण कहकर उनकी परम्परा और संस्कृति को भ्रष्ट किया जा रहा है। अतिक्रमण की इस प्रक्रिया के खिलाफ आदिवासी समाज ने लगातार विद्रोह किया है। यह बात अलग है किसी भी इतिहास-ग्रन्थ में इस विद्रोह को समुचित स्थान नहीं दिया गया। आज जब आदिवासी समाज अपनी अभिव्यक्ति अपने कलम से करने में सक्षम है, वह अपना इतिहास और अपना विद्रोह आदिवासी साहित्य विमर्श के रूप में दर्ज कर रहा है। इस तरह हम कह सकते हैं, आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा का नाम ही समकालीन आदिवासी साहित्य आंदोलन है। डॉ गंगा सहाय मीणा लिखते हैं- "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं

द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकटों और उनके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"[1] हाँसदा सौभेन्द्र शेखर की कहानी 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' न सिर्फ आदिवासियों के शोषण का विरोध करती है बल्कि उस व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह भी करती है जो जल-जंगल-जमीन के साथ-साथ मनुष्य को भी मात्र एक संसाधन के रूप में देखती है।

आज हमारा समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। जहाँ वस्तु-परिस्थितियां लगातार बदल रही हैं। आदिवासी समाज इस प्रक्रिया से अछूता नहीं है। इस बदलाव ने समाज को गति दी है। लेकिन इसके प्रतिकूल प्रभावों को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता। यह स्पष्ट है कि अगर इन सभी बदलावों का सबसे प्रतिकूल प्रभाव अगर हुआ है तो वह आदिवासी समाज पर है। "आदिवासी समाज आज अनेक तरह की चुनौतियों से जूझ रहा है। और ये चुनौतियाँ लगातार बढ़ती ही जा रही हैं। आदिवासियों की समस्याएं सुलझाने के बजाय और उलझती जा रही हैं। इसकी सबसे बड़ी वजह आदिवासी जीवन और समाज से बाहरी समाज और सरकारों का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है।"[2] हाँसदा सौभेन्द्र शेखर ने अपनी इस कहानी के माध्यम से आदिवासी-जीवन और उसकी चुनौतियों एवं उनके संघर्षों को अभिव्यक्त किया है। आदिवासी जीवन की ये चुनौतियाँ एक तरफ उनके जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए है तो दूसरी ओर अपनी संस्कृति के लिये।

आदिवासी संस्कृति का आदिवासी जीवन से गहरा सम्बन्ध हैं। आदिवासी जीवन और प्रकृति का परस्पर संबंध होने के कारण या कहें कि एक-दूसरे पर आश्रित होने के कारण आदिवासी संस्कृति में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। आदिवासी संस्कृति प्रकृति आधारित संस्कृति है। आदिवासी सांस्कृतिक-संसार में प्रकृति-प्रेम, आदिम सौंदर्य-बोध, नृत्य-संगीत, कला, आचार-अनुष्ठान, त्योहार, पर्व, धार्मिक संहिताएँ आदि, मुख्यधारा समाज से भिन्न उनके नित-दिन एवं संपूर्ण जीवन से जुड़ी सहज इकाइयां हैं। इन सब पहलुओं का अध्ययन करते समय हम आदिवासी दर्शन को निकटता से देखते हैं। आदिवासी दर्शन हमें प्रकृति के साथ जीने और प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग करना सिखाता है। तथाकथित मुख्यधारा समाज जिस प्रकार प्रकृति का दोहन करता है, संसाधनों को लूटता है उस व्यक्तिपरक-उपभोगितावादी दर्शन से बिलकुल भिन्न दर्शन हमें आदिवासी समाज में देखने को मिलता है। हाँसदा सौभेन्द्र शेखर

ने अपनी इस कहानी में आदिवासी-संस्कृति और उस पर बढ़ रहे संकटों को केंद्र में रखा है। कहानी में मंगल मुर्मू का राष्ट्रपति के सामने नाचने से इनकार करना महज़ नाचने से इनकार करना नहीं है। वह आदिवासियों के विस्थापन, आर्थिक-सामाजिक एवं संस्कृति शोषण के विरोध का प्रतीक है।

हाँसदा सौभेन्द्र शेखर ने अपनी कहानी 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' में झारखण्ड के आदिवासियों की स्थिति को, मंगल मुर्मू जो एक संगीतकार है, के माध्यम से कहने का प्रयास किया है। यह कहानी 2013 में घटित एक वास्तविक घटना से प्रेरित है। झारखण्ड के गोड्डा में जिंदल पावर संयंत्र के शिलान्यास का विरोध करने पर वहाँ आदिवासी-किसानों को गिरफ्तार किया गया था। जिंदल पावर संयंत्र का शिलान्यास तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी द्वारा किया जाना था। यह पावर संयंत्र कई आदिवासी गांवों को उजाड़कर स्थापित किया गया था यही कारण है कि वहाँ के मूलनिवासी इसका विरोध कर रहे थे। कहानीकार ने इस घटना को आधार बनाकर कहानी की रचना की है। मंगल मुर्मू एक संगीतकार है। उसका एक डांस ग्रुप है। वे लोग गाँव-गाँव जा कर नृत्य और संगीत का प्रदर्शन करते हैं। मंगल मुर्मू और उनके मंडली को संगीत-नृत्य प्रदर्शनी के लिए झारखण्ड सरकार द्वारा निमंत्रण मिलता है और वे लोग प्रदर्शन के लिए तैयार भी हो जाते हैं। लेकिन मंगल मुर्मू को यह बाद में पता चलता है कि, इन लोगों को संगीत-नृत्य का प्रदर्शन राष्ट्रपति के सामने करना है, वह भी थर्मल पॉवर संयत्र के आधारशिला लगाने के कार्यक्रम में। गोड्डा का थर्मल पॉवर प्लांट का मालिक एक अमीर व्यवसायी है। थर्मल पवार प्लांट बनाने के लिए गोड्डा के आस-पास के अनेक गांवों को खाली करने के लिए कहा गया। जब स्थानीय लोगों ने अपने गाँव और जमीन छोड़ने से मना किया तो प्रशासन की मदद से उनके गांवों को जबरदस्ती उजाड़ दिया गया। उनकी जमीनों पर कब्ज़ा कर लिया गया। यह अतिक्रमण की प्रक्रिया आदिवासी बहुल क्षेत्रों में बहुत लम्बे समय से चल रहा है। जब भी कोई सरकारी या गैरसरकारी संस्थानों को कोई बड़ा संयंत्र लगाना होता है, आदिवासी उनके लिए सबसे पहले शिकार बनते है। आदिवासी जिन स्थानों में रहते हैं, वे वहाँ की प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी करते हैं। इन संसाधनों के लिए भी पूंजीवादी कंपनी या सरकार आदिवासी क्षेत्रों पर लगातार कब्ज़ा करते जा रहे हैं। जब यहाँ के स्थानीय लोग अपने संसाधनों, अपने जल-जंगल-जमीन को बचाने के लिए विरोध करते हैं तो उन्हें नक्सली और देशद्रोही बताकर प्रशासन द्वारा प्रताड़ित किया जाता है। कहानी में जब गाँव वालों ने अपनी ज़मीन देने से मना किया तो पुलिस ने उनकी पिटाई कर हिरासत में डाल दिया। इन सब के बावजूद गोड्डा में पॉवर प्लांट की आधारशिला डालने का कार्यक्रम रखा गया। और इसके लिए खुद

राष्ट्रपति आ रहे थे। मंगल मुर्मू राष्ट्रपति के सामने अपना प्रतिरोध जाहिर करता है। कहता है- "हम आपके सामने गाएँगे और नाचेंगे लेकिन आप हमें बतायें कि क्या हमारे पास नाचने-गाने का कारण है? क्या हमारे पास खुश होने का कारण है? आप अब पावर प्लांट का निर्माण आरम्भ करेंगे, लेकिन यह प्लांट हम सबका अन्त होगा, सभी आदिवासियों का अन्त...जब तक हमें हमारा घर और ज़मीन वापस नहीं दी जायेगी, हम नहीं गाएँगे और नहीं नाचेंगे। यह आदिवासी नहीं नाचेगा। आदिवासी नहीं नाचेंगे..."[3] इस तरह राष्ट्रपति के सामने नाचने से मना कर के मंगल मुर्मू उस पूरी व्यवस्था का विरोध करता है जो तथाकथिक विकास के लिए आदिवासी जीवन-संस्कृति को नष्ट कर रहा है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में सरकार द्वारा अनेक प्रकार की विकास परियोजनाएं प्रस्तावित किए गए। इन परियोजनाओं का मूल लक्ष्य देश का नवीकरण, विकास, और आत्मनिर्भर बनना रहा है। सरकारों द्वारा जिन परियोजनाओं को लागू किया गया उनके सकारात्मक परिणाम से साथ-साथ उनका नकारात्मक पक्ष भी है। बाँध परियोजनाओं के कारण कृषि और सिंचाई के लिए पानी की पूर्ति, घरेलू उपयोग तथा कारखानों-संयंत्रों के लिए पानी की पूर्ति हुई, लेकिन उपर्युक्त सभी लाभ समाज के उच्च वर्ग और उद्योगपतियों को ही हुआ। आम जनता को इन सब योजनाओं का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, वह अब भी गरीबी और बेरोज़गारी की स्थिति में जी रही है। इन परियोजनाओं का नकारात्मक प्रभाव जरूर आम जनता पर पड़ा है। अब तक बाँध परियोजनाओं ने लगभग 40 मिलियन लोगों को विस्थापित किया, भूमिहीन बनाया। विस्थापन की यह त्रासदी सबसे अधिक आदिवासियों को ही भुगतना पड़ा। औपनिवेशिक समय में अंग्रेजों ने वन अधिनियम बनाकर उनके ज़मीन और जंगलों पर कब्ज़ा किया। आज़ादी के बाद भी भारत सरकार की विकास नीतियों ने आदिवासियों को शोषित, विस्थापित किया है। आदिवासियों को बड़े-बड़े बाँध और जल परियोजनाओं, बड़े संयंत्र-निर्माण, खनिज संसाधनों के खनन आदि के नाम पर उनके मूल स्थानों से, उनके जंगल और जमीन से लगातार बाहर किया जाता रहा है। पर्यावरण संरक्षण, जंगलों के संरक्षण, राष्ट्रीय उद्यानों के नाम पर भी आदिवासियों अपनी जगह से बेदखल किया जा रहा हैं। इन विस्थापित लोगों में ज़्यादातर गरीब और अनपढ़ ग्रामीण जनता, किसान, मजदूर और आदिवासी ही होते हैं। इनके पुनर्वास का मुद्दा भी गंभीर विषय है। जो सरकार या पूंजीपति कंपनियां पुनर्वास की बात करते हैं वह अपनी जिम्मेदारियां वहाँ के स्थानीय प्रशासन और अधिकारियों के ऊपर डालकर स्वयं बच निकलते हैं।

कहानी में जिस थर्मल पॉवर संयंत्र का जिक्र है वह लोहा और स्टील का प्लांट है। जिसके लिए अधिक मात्र में बिजली की आवश्यकता होगी। बिजली उत्पादन भी संयंत्र में ही होगा। बिजली उत्पादन के लिए कोयला चाहिए। बिजली उत्पादन के लिए जितने कोयले की ज़रूरत है वह वहीं के खदानों से निकालना तय किया गया है। व्यवसायी ने इसके लिए सरकार को भी अपने पक्ष में कर लिया। इस संयंत्र से पूरे झारखण्ड को बिजली प्रदान करने का आश्वासन दिया। इसके अलावा 'पूरे शहर में लगातार बिजली होगी', 'फैक्ट्रियाँ बिजली न होने के कारण नहीं रुकेंगे' 'इस से उन्नति और नौकरियाँ होंगे' आदि कई प्रकार के वादें सरकार और कंपनी द्वारा किए जाते हैं। इस तरह के वादों की हकीकत हम सब जानते हैं। एक बार के लिए मान भी लिया जाये की ये सभी वादें पूरे भी किए जायेंगे तो भी उनका क्या जिनकी जमीनों को हड़पकर खदान खोदे जायेंगे? जिनके घर तोड़ दिए गये? जिनके गाँव उजाड़ दिए गये? इस प्रकार का विकास किस के लिए है? कहानी में मंगल मुर्मू कहता है- "आप अब पावर प्लांट का निर्माण आरम्भ करेंगे, लेकिन यह प्लांट हम सबका अन्त होगा, सभी आदिवासियों का अन्त। वह सज्जन जो आपकी बगल में बैठे हैं उन्होंने आपको कहा है कि यह पावर प्लांट हमारा भाग्य बदल देगा, लेकिन उन्होंने ही हमें हमारे घरों और गाँवों से जबरन निकाल दिया है। हमारे पास कहीं जाने की जगह नहीं है, कहीं अपनी फ़सल उगाने की जगह नहीं है। पावर प्लांट हमारे लिए अच्छा कैसे हो सकता है?"[4]

झारखण्ड का पारंपरिक आदिवासी जीवन पुरखा-संगीत, गीत-नृत्य एवं नाट्य से समृद्ध है। उनका कोई भी पर्व बिना संगीत, गीत-नृत्य या नाट्य के अधूरा है। यह आदिवासी जन-जीवन की सामूहिकता की पहचान है। जीवन में घटित होनेवाले सुख-दुःख, संयोग-वियोग, आशा-निराशा, हास्य-विनोद आदि के अनेक रूप इन गीतों में पाए जाते हैं। जिस प्रकार आदिवासी जीवन और संस्कृति प्रकृति से जुड़ीं हैं, उनके पुरखा-गीतों में भी प्रकृति का अभिन्न झलक देखने को मिलते हैं।

"तोद केदम रोहोई केदम/गाची गाची हेर हेद में।"[5]

(तुमने रोपी है नई पौध/उखाड़ फेंको अब धान के बिरवों के बीच उग आए फिजूल घास-पात)

यह सन्थाल आदिवासी समुदाय द्वारा 'बाहा' पर्व के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत है। इन दो पंक्तियों में नए पौधों के संरक्षण और विकास के लिए नुकसान पहुंचाने वाले घास-पात को उखाड़ डालने की बात कही गयी है। साधारण तौर पर इसका अर्थ खेती-किसानी से जुड़ा है। जबकि इसका दूसरा और व्यापक अर्थ समुदाय और उसके सामाजिक हित की रक्षा से है। इस प्रकार आदिवासी जीवन दर्शन उनके पुरखा गीतों में सम्पूर्णता से देखने को मिलता है।

आज वैश्वीकरण और उसकी बाजारवादी मानसिकता ने न सिर्फ आदिवासियों और श्रम को बाजार की वस्तु बना दिया है, उनके गीत, संगीत और नृत्य को भी बाज़ार की एक वस्तु में तबदील कर दिया है। "हमारा संगीत, हमारा नृत्य, हमारे गीत हम सन्थालों के लिए पवित्र हैं। लेकिन भूख और गरीबी ने हमें वह बेचने के लिए मजबूर किया जो हमारे लिए पवित्र है।"[6] मंगल मुर्मू का यह कथन पूरे आदिवासी की व्यथा और सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करता है। आदिवासी जिस कला को पवित्र मानकर सदियों से निभा रहे हैं, आज उसी को बेचने के लिए मजबूर हैं, मजबूर किए जा रहे हैं। मंगल मुर्मू अपना परिचय देते हुए कहता है- "मेरा नाम मंगल मुर्मू है। मैं एक संगीतकार हूँ। नहीं, रुकिए...मैं एक किसान हूँ। या...एक किसान था। एक किसान था ही ज्यादा सही है क्योंकि मैं अब खेती नहीं करता।"[7] यह सिर्फ मंगल मुर्मू का परिचय नहीं है, यह आज के उन अधिकांश आदिवासियों का परिचय हो गया है जो शहर से दूर अपने गांवों में रह रहे हैं।

बदलती परिस्थितियों ने किस प्रकार आदिवासी जीवन को संकट में डाल दिए है उसका स्पष्ट विवरण उक्त वक्तव्य में दिखता है। बाहर से जो लोग आदिवासी इलाकों में आये उन्होंने आदिवासियों की ज़मीनों पर कब्ज़ा कर लिया है। आदिवासी आज अपनी ही भूमि में भूमिहीनों की तरह रह रहे हैं। भूमि-रहित आदिवासियों को अपनी पारंपरिक खेती-किसानी वृत्ति छोड़नी पड़ी। आज भूख और गरीबी हर आदिवासी गाँव का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं। आदिवासियों की जो खेती योग्य जमीनें थी, उनके जो जंगलें थे, अब खदान में बदले गए हैं। आदिवासियों को जीवन-यापन के लिए उन्हीं खदानों में कम वेतन पर बिना किसी सुरक्षा-सुविधाओं के काम करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। जिसकी वजह से वे न सिर्फ आर्थिक रूप से विपन्न हुए हैं, कई तरह की बीमारियों का भी शिकार होना पड़ता है। आजीविका के लिए विस्थापित हुए आदिवासियों को नई और अनजान परिस्थितियाँ दूसरी अनेक तरह की समस्याओं में धकेल रहे हैं। जहाँ भूख और गरीबी के भयानक चक्र में आदिवासियों को अपनी पहचान के लिए भी लगातार संघर्ष करना पड़ता है। मंगल मुर्मू कहता है- "एक भूखे आदमी को क्या चाहिए होता है? खाना। एक गरीब व्यक्ति को क्या चाहिए होता है? पैसे। मुझे दोनों चीज़ों की ज़रूरत है। और एक पहचान की भी।"[8]

प्राचीन समय से ही आदिवासी समाज 'सरना' धर्म को मानते आया है। झारखण्ड और छोटानागपुर के सन्थाल परगाना के लगभग सभी आदिवासी आज भी सरना धर्म को मानते हैं। सरना धर्म का पूजा स्थान भी प्रतीकात्मक है। सरना धर्म में शाल वृक्ष का उपयोग होता है और इस वृक्ष का प्रत्येक भाग उपयोगी होता है। आदिवासी इसको देवता मानकर पूजा करते

हैं। केवल शाल वृक्ष की ही नहीं, अन्य वृक्षों की भी पूजा आदिवासियों में होती है। आज 'संस्कृतिकरण' के प्रभाव से आदिवासी संस्कृति और धर्म दोनों विकृत हो रहे हैं। विलुप्त हो रहे हैं। आलम यह है कि समाज का प्रभुत्वशाली वर्ग आदिवासियों के अलग धर्म को ही नकारने लगा है। सरकारी दस्तावेजों में भी आदिवासी सरना धर्म के लिए कोई स्थान नहीं बचा हैं। इस समस्या के सन्दर्भ में मंगल मुर्मू कहता है- "हम अपने सरना धर्म को खो रहे हैं, हमारा अस्तित्व और हमारी जड़ें। हम ऐसे लोग बनते जा रहे हैं, जिनका अपना कोई देश नहीं, अपनी कोई पहचान नहीं।"[9] सरना केवल उनका धर्म नहीं है। आदिवासी संस्कृति और उसके दर्शन का पहचान भी है।

औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजों द्वारा जंगल और प्राकृतिक संसाधनों संबंधी जो नियम लागू किए उस के कारण आदिवासियों से, जंगल तथा उसके संसाधनों पर उनका जो अधिकार था, छीन लिए गए। जंगलों पर उनके अधिकार सीमित कर दिए गए। उन्हें भूमि का लगान देने के लिए भी मजबूर किया गया। लगान न दे पाने के कारण उन्हें भूमिहीन होकर जंगलों से पलायन करना पड़ा। इस प्रकार आदिवासियों की पारंपरिक स्वशासन व्यवस्था भी इन नियमों के चलते बिखरने लगी। उनका अस्तित्व और अस्मिता का संकट जो औपनिवेशिक दौर से शुरू हुआ था वह आज भी लगातार बढ़ती ही जा रही है। 1990 के बाद वैश्वीकरण के दौर में आदिवासियों का भूमि अधिग्रहण, उनका पलायन और विस्थापन की संख्या में तीव्र बढ़ोतरी हुई है। इस तरह हम देखते हैं कि विकास की रणनीतियों का सबसे गहरा आघात भारत के आदिवासियों को ही भुगतना पड़ा है। इस पूरी प्रक्रिया को डॉ. अनुज लुगुन आदिवासियों को बाजार में घसीटने की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं, इसलिए वो लिखते हैं- "यही वह औपनिवेशिक नजरिया है जिसने आदिवासी समाज की अस्मिता और अस्तित्व को संकट की स्थिति में ला खड़ा किया है। आदिवासियों के आज के जल, जंगल, और जमीन की लड़ाई वैचारिक नारों की लड़ाई नहीं है, बल्कि यह उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि में मौजूद उनकी चेतना का अभिन्न हिस्सा है। उनकी अपनी पूरी समाज व्यवस्था और अर्थव्यवस्था है जिसे लगातार ध्वस्त किया जा रहा है। इन्हीं सन्दर्भों में आज के आदिवासी-प्रश्न का वैश्विक सन्दर्भ उभरता है जो मौजूदा 'विकास' और 'सभ्यता' को फिर से परिभाषित और विश्लेषित करने की माँग करता है।"[10]

आदिवासी क्षेत्रों एक और बड़ी समस्या है, दिकुओं की समस्या। 'दिकु' शब्द उन सभी लोगों के लिए प्रयोग किया गया जो आदिवासी समाज से बाहर हैं और आदिवासियों का किसी भी रूप में शोषण करते हैं। धर्म-प्रचारक, ज़मींदार, सूदखोर, बाहर से आये व्यापारी और बाहर से आने वाले सरकारी अफसर सभी आदिवासियों के लिए दिकु हैं। औपनिवेशिक दौर से पहले ही

भारत में दिकुओं की समस्या शुरू हो गयी थी। जबकि बिरसा मुंडा अंग्रेजों को दिकुओं की जननी मानते हैं। 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी में भी दिकुओं से पीड़ित आदिवासी समाज का चित्रण देखने को मिलते हैं। मंगल मुर्मू अपने क्षेत्र की तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए समाज की विकराल परिस्थितियों का कारण दिकुओं को मानता है। उनके ज़मीन के एक हिस्से पर कोयला व्यापारियों और दूसरे हिस्से पर पत्थर के व्यापारियों ने कब्ज़ा कर लिया है। मारवाड़ी, सिन्धी, मंडल, भगत, मुस्लिम व्यापारी उनके ज़मीन से पत्थर और कोयला खोदकर पैसा कमा रहे हैं। वो शहर में बड़े-बड़े घर, अच्छे कपड़े, बच्चों के लिए अच्छे-अच्छे स्कूल, अच्छे अस्पताल आदि का इंतजाम करते हैं। आदिवासियों को क्या मिलता है? पहनने के लिए चिथड़े, बहुत कम खाना, और बड़ी-बड़ी बीमारियाँ जिस से सांस लेना भी मुश्किल हो जाता। ये व्यापारी आदिवासियों के संसाधनों को लूटते हैं तो वही खदान कंपनियों द्वारा आदिवासी स्त्रियों का शारीरिक और यौन शोषण किया जाता है।

बाहर से आये लोगों द्वारा आदिवासियों की ज़मीन हड़पने के प्रकरण दिन-प्रतिदिन देखने को मिलते हैं। सरकारें भी इस तरह के अतिक्रमण के लिए उत्तरदायी है, नहीं तो इतने कानून होने के बाद भी इस तरह की घटनाएँ कैसे संभव हैं? वहीं जब कोई आदिवासी अपने अधिकार के लिए लड़ता है तो पूंजीपति और कभी-कभी तो खुद प्रशासन उनको दबाने की कोशिश करता है। आदिवासियों के विकास की लगभग सारी परियोजनाएं अफसरों को समृद्ध करती हैं। मशीनरियों, जिसमें ईसाई और हिन्दू दोनों आते हैं द्वारा धार्मिक रूप से आदिवासियों को कमजोर करते हैं उनका धर्मांतरण करवाते हैं। आदिवासी इलाकों में राजनेता आते है तो बस कुकुर्मुत्तों की तरह, चुनाव के समय में। मज़ेदार बात यह है की इन सब बातों को जानते हुए भी लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मीडिया भी चुप रहता है। इसको कहानी के मध्यम से भी समझ सकते हैं, जब चार गाँव उजाड़े गए, जब पुलिस ने गांव वालों को हिरासत में रखा तब कोई भी पत्रकार उस जगह नहीं गए। लेकिन जब पावर संयंत्र का आधार शिला लगाया जा रहा वहां हर जगह पर रिपोर्टर, कैमरा सब पाया जाता है।

निष्कर्ष : 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी द्वारा हाँसदा सौभेन्द्र शेखर ने झारखण्ड के संथालों के मध्यम से आदिवासियों के संघर्ष को दिखाया है। कहानी में मंगल मुर्मू का प्रतिरोध अकेले मंगल मुर्मू का प्रतिरोध नहीं पूरे आदिवासी समाज का प्रतिरोध है। आदिवासी समाज सदियों दमन,शोषण, और विस्थापन के खिलाफ संघर्ष कर रहा है। आज उसका संघर्ष दमन,शोषण, और विस्थापन के खिलाफ तो है ही अब यह संघर्ष अपनी संस्कृति, अपनी पहचान और अस्मिता को बचाने के लिए भी है। वैश्वीकरण और बाजारवाद के इस दौर में यह संघर्ष लगातार

कठिन होते जा रहा है। जिसे आदिवासी साहित्य पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत कर रहा है। 'आदिवासी नहीं नाचेंगे' कहानी आदिवासी समाज की तत्कालीन समस्याओं को चित्रित ही नहीं करती यह उनके प्रतिरोध का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

सन्दर्भ सूची

1. मीणा, डॉ गंगा सहाय, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ट -9
2. मीणा, डॉ गंगा सहाय, आदिवासी और हिंदी उपन्यास, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ट- 24
3. शेखर, हांसदा सौभेन्द्र, आदिवासी नहीं नाचेंगे, राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली,2018, पृष्ट -186,187
4. वही, पृष्ट -187
5. टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, नोशनप्रेस.कॉम,इंडिया, पृष्ट -25
6. शेखर, हांसदा सौभेन्द्र, आदिवासी नहीं नाचेंगे, राजपाल एंड सन्ज़, दिल्ली,2018, पृष्ट -179
7. वही, पृष्ट -172
8. वही, पृष्ट - 180
9. वही, पृष्ट -174,175
10. लुगुन, अनुज, आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, नई किताब प्रकाशन, 2015

मनीषा के एस

शोधार्थी, हिंदी विभाग, श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी

केरल-683574, Mail- maneeshaks26@gmail.com

Mob No - 7356173315